पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा २०१-२०२,
अहमदाबाद, तारीख २१/११/१९८९, प्रवचन LA243

यह श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका निर्जरा अधिकार गाथा २०१ और २०२। पेज नं. ३१५ है।

'अब शिष्य पूछता है कि रागी (जीव) सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं होता?' हम तो सम्यग्दृष्टि की अवस्था में भी राग होता हुआ देखते हैं। पंच महाव्रत के परिणाम। फिर जो देशव्रत के परिणाम, उसके पहले (की अवस्था में) देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग। सम्यग्दृष्टि की दशा में राग होता है ऐसा देखते हैं। तो फिर रागी जीव हो, उसको सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जाता है? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझने के लिए। सम्यग्दृष्टि तो कहलाता है, पर मुझे समझना है। कि राग होते हुए भी उसे सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जाता है?

उसके उत्तर (में) दो गाथा हैं। अब गाथा सब एक-साथ बोलिये।

अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव को।
वह सर्व आगमधर भले ही, जानता नहीं आत्म को।।२०१।।
नहीं जानता जहँ आत्म को, अनआत्म भी नहीं जानता।
वह क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जीव-अजीव को नहीं जानता? २०२।।

प्रश्न ऐसा है कि यदि वह रागी हो, वह जीव है, तो वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? राग उसकी दशा में होना ही नहीं चाहिए। उसकी पर्याय में से भी राग चला जाये तो तो सम्यग्दृष्टि कह सकते हैं। लेकिन उसकी पर्याय में पँच महाव्रत के परिणाम दिखते हैं। नीचे (के गुणस्थान में) ग्यारह प्रतिमा के विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे दिखते हैं। उसके नीचे चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग आता है, आता हुआ दिखाई देता है। तो रागी है और फिर तुम कहते हो (कि) सम्यग्दृष्टि (है)। ये क्या है? तो इसके उत्तररूप गाथा कहते हैं।

'टीका :- जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है...' राग के दो प्रकार हैं। एक अस्थिरता का राग और एक अज्ञानमय राग। अर्थात् राग को जो अपना माने, ऐसा रागी सम्यग्दृष्टि नहीं है। राग को पराया भाव जानता है, विभाव है, मेरा स्वभाव नहीं है, उसको आत्मा में नास्तिपने जानता है, आत्मा में अस्ति है राग की- ऐसा जानता नहीं है।

ज्ञान की अस्ति है और राग की नास्ति है। आत्मज्ञान की आत्मा में अस्ति है। और रागादि की आत्मा में नास्ति है और आत्मज्ञान में भी राग की नास्ति है। अर्थात् (जो) रागी है वह जीव नहीं होता। ज्ञानी हो वही जीव और सम्यग्दृष्टि होता है। तो यहाँ कहते हैं कि **'रागादि अज्ञानमय भावों...'** मिथ्यात्व, लेशमात्र भी मिथ्यात्व नहीं है। सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का राग नहीं होता। राग, राग में बड़ा अन्तर है।

'जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है...' छोटे से छोटे मिथ्यात्व

का राग,... राग के दो प्रकार हैं। श्रद्धा के दोष को भी राग कहते हैं और चारित्र के दोष को भी राग कहते हैं। राग नाम एक है, नाम राग, लेकिन एक श्रद्धा की विपरीत पर्याय मिथ्यात्व, पाप के परिणाम वे भी राग हैं। और चारित्र की दशा में शुभाशुभ भाव होते हैं, उन्हें भी राग कहते हैं। राग राग में बड़ा फर्क है। सम्यग्दृष्टि को उसकी दशा में लेशमात्र राग नहीं है अर्थात् कि मिथ्यात्व का कण बिल्कुल नहीं है। अज्ञानमय राग नहीं है। अस्थिरता का राग भले हो लेकिन वह ज्ञान के ज्ञेय में जाता है। कर्ता के कर्म में नहीं जाता।

'जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है...' अज्ञान और मिथ्यात्व का जरा सा भी सद्भाव है, (तो) सम्यग्दर्शन जरा भी नहीं है। सम्यग्दर्शन जरा भी नहीं है। और मिथ्यात्व जरा सा रह जाता है। थोड़ा सा। थोड़ा भी। मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है कि मिथ्यात्व का छोटे में छोटा अंश भी बुरा है, वह यह है।

कहते हैं कि जरा भी यदि राग रह गया मिथ्यात्व का, तो '**वह भले ही श्रुतकेवली जैसा हो...',** श्रुतकेवली नहीं हुआ है। केवली तो है ही नहीं, किन्तु श्रुतकेवली भी नहीं है। क्योंकि वह श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को नहीं जानता है, इसलिए श्रुतकेवली नहीं है। पर श्रुतकेवली जैसा दिखता है शास्त्रपाठी। तो **'श्रुतकेवली जैसा हो तथापि वह ज्ञानमय भाव के अभाव के कारण...'**, अज्ञानमय भाव के सद्भाव के कारण और ज्ञानमय भाव के अभाव के कारण। आत्मा का तो ज्ञान है नहीं। शास्त्रज्ञान.. उसको अपना मानता है। मिथ्यात्व है। शास्त्र का ज्ञान होता ही नहीं। ज्ञान शास्त्र से होता नहीं। और ज्ञान शास्त्र का भी नहीं होता। और ज्ञान शास्त्र को प्रसिद्ध नहीं करता। ज्ञान तो उसे कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान उसे ज्ञान (कहते हैं)। कि जो ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करता है उसे ज्ञान कहने में आता है। ऐसे आत्मज्ञान के अभाव के कारण, अनुभव ज्ञान के अभाव के कारण, अतीन्द्रियज्ञान के अभाव के कारण, स्वसंवेदन ज्ञान के अभाव के कारण **'आत्मा को नहीं जानता...'**आहाहा!

राग का सद्भाव है। अज्ञानमय भाव है। और ज्ञानमय भाव का अभाव है। अतः वह आत्मा को नहीं जानता इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि कहने में आता है। अब इसका थोड़ा स्वरूप, हम जरा सरल करके समझें।

कि ये आत्मज्ञान क्या? और शास्त्रज्ञान क्या? और ज्ञान गुण क्या? आत्मज्ञान क्या? शास्त्रज्ञान क्या? और ज्ञान गुण क्या? तीन प्रकार हैं। ज्ञान उसे कहा जाता है... देखो, शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान (ऐसा भेद) अभी लक्ष्य में मत लेना। शास्त्रज्ञान होता है या आत्मज्ञान होता है? वास्तव में तो शास्त्रज्ञान भी नहीं होता और आत्मज्ञान भी नहीं होता। ज्ञान प्रगट होता है, प्रत्येक जीव को। **'सामान्य उपयोग लक्षणम्'** ज्ञान प्रगट होता है, प्रत्येक जीव को। एकेन्द्रिय हो, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, छठा मन, सभी को। उपयोग लक्षण जो है प्रगट। सदा उपयोगमय आत्मा है। अकेला राग प्रगट हो और उपयोग प्रगट न हो, तो जड़ हो जाये। और अकेला उपयोग प्रगट हो और राग प्रगट न हो, तो तो सिद्ध होना चाहिये। लेकिन राग और ज्ञान एकसाथ प्रगट होते हैं, पर भिन्न-भिन्न प्रगट होते हैं। वे एक होकर प्रगट नहीं होते हैं। ज्ञान में राग नहीं है और राग में ज्ञान नहीं है। ज्ञान के कारण राग की उत्पत्ति नहीं है। और राग उत्पन्न होता है, इसलिए ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक

अपेक्षा से, आत्मा है इसलिए उपयोग उत्पन्न नहीं होता। उपयोग तो उपयोग से उत्पन्न होता है। वह स्वतः निरपेक्ष पर्याय है।

उपयोग जब प्रगट होता है तब या तो वह इन्द्रियज्ञान में कन्वर्ट कर देता है या अतीन्द्रिय ज्ञान में कन्वर्ट कर दे। समय एक है। उत्पन्न होने का समय एक है। उस समय यदि उसे ऐसा ख्याल में लेवे कि मुझे पर जानने में आता है, तो इन्द्रियज्ञान इज़ इक्वल टू (=) अज्ञान (खड़ा हो गया)। व्यवहार ज्ञान नहीं। और यदि वह उपयोग प्रगट होता है तब ऐसा ख्याल में ले कि ओहो! इस वर्तमान उपयोग में तो मुझे ज्ञायक आत्मा, आबाल-गोपाल सभी को जानने में आता है तो मैं भी बाल-गोपाल में आ गया। तो मुझे भी वर्तमान वर्तते हुए उपयोग में आत्मा जनाता (जानने में आता) ही है। उसे न जानने में आता हो तो भी जनाता रहता है। वह स्वीकार न करे, तो इससे ज्ञायक उसमें न जानने में आये और ज्ञान उसे न जाने, ज्ञान जानने की क्रिया बंद कर दे और ज्ञायक उसमें जनाने की क्रिया (बंद कर दे)- ऐसा नहीं होता। ज्ञायक में ज्ञेयत्व का नाश नहीं होता। और ज्ञान में ज्ञानत्व का नाश नहीं होता। यह स्थिति है, सामान्य ज्ञान उपयोग की।

अभी सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान की देर है, थोड़ी। अभी तो आहाहा! फिर कैसे मिथ्याज्ञान कहलाता है और कैसे सम्यग्ज्ञान कहलाता है यह इसमें से ही अभी निकलेगा।

ज्ञान प्रगट होता है प्रत्येक जीव को। सदा उपयोग लक्षण जीव है। उस उपयोग में यदि ऐसा ख्याल में आये, स्वयं से ख्याल नहीं आता, और कदाचित् सोनगढ़ के संत मिल जाएँ और कहें कि तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। वापस पलट जाता है। कि साहेब यह पर जानने में नहीं आता? (तो गुरु कहें) कि नहीं, बिल्कुल जानने में नहीं आता। पर जानने में नहीं आता तो ज्ञान का नाश होगा, अज्ञान का नाश होगा? पर जानने में आता है तब तक अज्ञान है। 'मैं पर को जानता हूँ', पर को जानता हूँ- यह तो असद्भूत व्यवहार है। और यह असद्भूत व्यवहार के पक्ष में रह गया। अभी तो ज्ञान आत्मा को जानता है, उसमें भी नहीं आता। असद्भूत अर्थात् झूठा। असद्भूत अर्थात् सच्चा नहीं। आहाहा!

झीनी बात है झवेरचंदभाई! जरा सूक्ष्म है! उपयोग लक्षण है। प्रत्येक समय प्रगट होता है। और यह लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। क्योंकि लक्षण और लक्ष्य (एक दूसरे से) तादात्म्य होते हैं। शक्कर और शक्कर की मिठास, शक्कर यहाँ और उसकी मिठास वहाँ, ऐसा (कहीं) होता होगा? ऐसा होता नहीं। लेकिन उसे ख्याल नहीं आता स्वयं से। इसी दौरान सोनगढ़ के संत मिले कि तेरे ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आ रहा है।

वास्तव में तुझे पर जानने में नहीं आता। क्योंकि ज्ञान, ज्ञान पर के सन्मुख होकर होता ही नहीं। क्या कहा? वह ज्ञान प्रगट होता है न! उपयोग। वह पर के सन्मुख होकर नहीं होता। क्योंकि **'परलक्ष अभावात्'**पर के लक्ष्य से ज्ञान की उत्पत्ति तीनकाल में नहीं होती।

ज्ञान तो चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग है। प्रत्येक समय प्रगट होता है। उन सोनगढ़ के संत ने कहा कि तुझे आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है। पर्याय जानने में आती है, ऐसा नहीं। पर्याय में द्रव्य जानने में आता है। और पर्याय में अकेला द्रव्य ही जानने में आता है। उसमें ऐसा नहीं लिया कि ये सामान्य अज्ञानी जीव हैं उनको रागादि और देहादि जानने में आते हैं और

आत्मा भी जानने में आता है, ऐसा स्वपरप्रकाशक है -ऐसा नहीं लिया। अकेला आत्मा ही जानने में आता है। आबाल-गोपाल सभी को। इसप्रकार जहाँ निर्णय करने जाता है, वहाँ जो सामान्य उपयोग है, वह अतीन्द्रियज्ञान में कन्वर्ट होकर अनुभव में आ जाता है।

अब कन्वर्ट करना तो आता है। उपयोग का अनुपयोग करता है। उपयोग का अज्ञान कर डालता है। ज्ञान का अज्ञानत्व करता है। अब ज्ञान का ज्ञानत्व करे, पलटा दे, (कि) जाननहार ही जानने में आता है, ज्ञायक जानने में आता है। क्योंकि ज्ञान में ज्ञायक तन्मय है। तन्मय के ऊपर वजन है। और जो परपदार्थ हैं, वे प्रतिभासित होते हैं। लेकिन परपदार्थ और ज्ञान एक नहीं होते, उसमें तन्मय नहीं होते। तन्मय तो नहीं होता, लेकिन पर के सन्मुख होता ही नहीं ज्ञान। पर के सन्मुख हो उसे हम ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! इस अलमारी के सन्मुख होकर अलमारी जानने में नहीं आती। आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा भी जानने में आती है और अलमारी के सन्मुख हुये बिना अलमारी जानने में आ जाती है अंदर। लोकालोक जानने में आ जाता है। यह ऐसी ज्ञान की ताकत है।

तो वह ज्ञान उपयोग प्रगट होता है। या तो मुझे पर जानने में आता है (ऐसा मानता है), तो अतीन्द्रियज्ञान के बदले इन्द्रियज्ञान पर की प्रसिद्धि करने गया। और पर को जानकर मोह हुए बिना रहता ही नहीं। जाने हुए का श्रद्धान होता, होता और होता ही है।

उसमें भी पाँच इन्द्रियों द्वारा स्थूल पदार्थ, रूपी पदार्थ जानने में आते हैं। आँख द्वारा देह जानने में आती है तो देह में आत्मबुद्धि (होती है)। और मन द्वारा राग जानने में आता है, तो राग में आत्मबुद्धि। आँख का विषय राग नहीं है। कान का विषय राग नहीं है। स्पर्श इन्द्रिय का विषय राग नहीं है।। उस राग को जाननेवाला मानसिक ज्ञान है। मन में राग ज्ञात होता है, जिस समय दुःख जानने में आता है, तो मैं दुःखी। आह! मैं दुःखी हो गया, क्योंकि इन्द्रियज्ञान जिसको जानता है उसमें आत्मबुद्धि किये बिना (रहता नहीं), इन्द्रियज्ञान एकत्व करता है और अतीन्द्रियज्ञान विभक्त कर डालता है।

भेदज्ञान अतीन्द्रियज्ञान से होता है। आत्मा का अनुभव अतीन्द्रियज्ञान में होता है। इन्द्रियज्ञान का विषय नहीं है आत्मा। इन्द्रियज्ञान से अगोचर है आत्मा। मन से भी अगोचर है। मन से भी पार है आत्मा। ज्ञान से गम्य है आत्मा। तब अनादिकाल से मैं पर को जानता हूँ, ऐसी मिथ्याबुद्धि प्रगट होती है। अब वापस फिर कि तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है, जाननहार जानने में आता है- ऐसा ले। अज्ञान टल जाएगा। समय मात्र में जात्यांतर हो जायेगा।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने फ़रमाया है, जो ज्ञान, अनंतकाल से जो ज्ञान..., ज्ञान शब्द प्रयुक्त किया है। **'अनंतकाल से जो ज्ञान भव-हेतु होता था।** भव अर्थात् दुःख। दुःख का हेतु, मतलब कारण। जो ज्ञान शब्द। अज्ञान नहीं। राग नहीं। जो राग भव-हेतु (भव का कारण) होता था, ऐसा नहीं लिखा। आहाहा! गूढ़, समझकर लिखा, कि कोई विचक्षण होगा तो इसमें से निकालेगा। उसकी बुद्धि के ऊपर छोड़ा। समझ गये? सब खुल्ला नहीं किया जाता। वे भी परीक्षा करते हैं कि मैं लिखता हूँ उसका हल निकालनेवाला कोई न कोई तो निकलेगा।

ऐसी एक घटना बनी। मेरे पिताजी बात करते थे। किसी गाँव में मेरा जन्म (हुआ) -जूनागढ़ के

उस तरफ स्वराष्ट्र में, लिंबुड़ा में। तो वहाँ से दस-पंद्रह गाँव दूर कोई गाँव है, वहाँ एक सेठ। बहुत पैसे (वाले)। बहुत पैसा। सोना-चाँदी भरपूर। कोई बाल बच्चे नहीं। अकेला। उसने विचार किया कि अब इसका क्या करना? विचार किया कि किसी भाग्यशाली के हाथ में यह धन जाये तो अच्छा। लेकिन भाग्यशाली को ढूँढना कहाँ? और जीते जी तो देना नहीं है किसी को। जीते जी तो दान भी करना नहीं है। समझ गये? तो अब करना क्या? कि मरने के बाद भाग्यशाली के हाथ में जाये तो ठीक, ऐसा विचार आया।

उसका उपाय क्या? उसका उपाय निकाला उन्होंने। एक बनाया स्टेच्यु। मूर्ति, समझे न? स्टेच्यु। स्टेच्यु बनाया। और वह खोखला था। उसमें सब भर दिया। उसमें सब कुछ भर दिया। ये दो (शरीर और गर्दन) भिन्न पड़ें, ऐसा बनाया था कि कोई सांध (जोड़) उसमें दिखे नहीं। और वह स्टेच्यु उसने बाहर रख दिया। समझ गये? प्रवेश द्वार में। सरहद समझे न? गाँव के बाहर। रास्ते के ऊपर। सब पढ़ते जाते। नीचे लिखा, 'सिर काटे वो माल निकाले।' सिर काटे वो माल निकाले। सब पढ़ते जाते। अरे! हमें सिर काटकर कहाँ माल निकालना है? यह तो मूर्ख है। सिर काटें फिर शायद उसमें पैसे मिलें तो वह किस काम का? इसलिए हमें सिर नहीं काटना है।

उसमें कोई विचक्षण समझदार (व्यक्ति) निकला कि कुछ मर्म लगता है इसमें। ओहोहो! सिर काटे वो माल निकाले यह क्या (बात है)? हं.. उसको ख्याल आ गया और ज़रा कहीं कोई देखे नहीं इसप्रकार (मूर्ती के) आसपास ठोककर देखा। खोखला लगता है। देखेंगे। रात के एक बजे घोड़े पर आया। वह डालकर, क्या कहलाता है? भरवाड़ के पास- बड़ा थैला। उसका नाम होता है कुछ, झोला, झोला। रात के एक बजे आकर ऐसा एक हथोड़े से प्रहार किया यहाँ (गर्दन) पर, धड़ उड़ गया। और धन का ढ़ेर सारा भरकर चला गया घर।

सुबह हुई, ७ बजे, ८ बजे, सब आते गये। अरे! यह क्या हुआ? अरे! यह तो खोखला था और इसमें धन था। कोई ले गया। सिर काटे, वह माल निकाले। वह मर्म यह था। कोई पैसे ले गया।

इसप्रकार ये मार्मिक बात हैं सभी। यह बात। मैं पर को जानता हूँ, यह (मान्यता) संसार है। मैं पर को नहीं जानता- (ऐसा मानते ही) संसार बंद हो जाता है। और पर को नहीं जानता (ऐसा मानता है), तो अज्ञान का नाश होता है। ज्ञान का नाश नहीं होता। ज्ञान तो उदय में आता है नया। आहाहा!

इसप्रकार यह अनंतकाल से पर को जानता हूँ और पर को करता हूँ। एक कर्ताबुद्धि और एक ज्ञाताबुद्धि। दोनों दोष अनंतकाल से हैं। इसीप्रकार श्रीमद्जी ने यह एक गूढ़ (रहस्य) लिखा। सिर काटे वह माल निकाले। उसमें लिखा कि "अनंतकाल से जो ज्ञान भव-हेतु होता था..." राग नहीं लिखा, अज्ञान नहीं लिखा, मिथ्यात्व नहीं लिखा। ज्ञान शब्द प्रयुक्त किया। यह क्या? समझ गये?

एक बहन ने प्रश्न किया सोनगढ़ में, कि यह क्या? मैंने कहा यह ज्ञान शब्द है न वह इन्द्रियज्ञान है। वह ज्ञान नहीं है, इन्द्रियज्ञान है। इन्द्रियज्ञान भव-हेतु लिखा है हों! राग तो भव-हेतु है, लेकिन इन्द्रियज्ञान को राग की कक्षा में डाला। दोनों को असद्भूत व्यवहार में डाला है।

जिसप्रकार राग पुराने कर्म के उदय के संग से होता है अर्थात् पुराने कर्म का कार्य, बंध का कार्य और नया बंध होता है, उसका कारण। राग है वह कार्य भी है और कारण भी है। नया बंध होता

है उसका कारण। निमित्त कारण। और पुराने कर्म के लक्ष्य से होता है इसलिए पुराने का यह कार्य कहलाता है।

उसीप्रकार इन्द्रियज्ञान बंध का कार्य और बंध का कारण समानकोटि का है। शास्त्रज्ञान को आत्मा मानकर विद्वान मर जाते हैं। आहाहा! शास्त्रपाठी को ख्याल नहीं आता कि इन्द्रियज्ञान अज्ञान है। ज्ञेय है। इन्द्रियज्ञान ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है। अभी इकत्तीस गाथा वहाँ पर चली थी, भाई, किशोरभाई। उसमें इन्द्रियज्ञान, द्रव्यइन्द्रिय, (भावइन्द्रिय), भावइन्द्रिय के विषय सभी को ज्ञेय में डाला। वे तीनों ही ज्ञेय में हैं। वे ज्ञान ही नहीं हैं।

फिर श्रीमद्जी फरमाते हैं कि '**अनंतकाल से जो ज्ञान भव-हेतु होता था, उस ज्ञान को समय मात्र में जात्यांतर किया...**' जाति बदल गई। इन्द्रियज्ञान में से अतीन्द्रियज्ञान हो गया। अज्ञान टलकर ज्ञान हो गया। '**और भव की निवृत्तिरूप हुआ, उस सम्यग्दर्शन को हम नमस्कार करते हैं**।' आहाहा! जितना ठगा जाता है जीव शुभभाव से, शुभभाव से धर्म होता है और (शुभभाव) करते-करते धर्म होता है, पुण्य करने से सुखी हुआ जाता है पुण्य करने से मोक्ष जाया जाता है। आहाहा!

सामान्य जनता शुभराग में अटक गयी, धर्म मानने लगी और विद्वान इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानने लगे। आहाहा! दोनों ही बड़ी भूल हैं। इसलिए जो इन्द्रियज्ञान है वह पराश्रित है। पर की प्रसिद्धि करता है। स्व को तिरोभूत करता है। ढक देता है। आहाहा!

इन्द्रियज्ञान में आत्मा के दर्शन नहीं होते। अर्थात् जिसने आत्मा का लक्ष्य छोड़ा है और राग को अपना माना है, ऐसा जो जीव, वह भले ही श्रुतकेवली हो, पंच महाव्रत पालता हो, नग्न (दिगंबर) हो, आहाहा! द्रव्यलिंगी मुनि हो, जंगल में रहता हो, गाँव में रहे ही नहीं। गाँव में रहे तो मुनि ही नहीं है। आहाहा! जंगल में ही रहते हैं और दिन में तो सोते ही नहीं। पंचपरमेष्ठी में जिन मुनि को नमस्कार हम करते हैं, वे मुनि, सच्चे मुनि हों! रात के पिछले पहर में पौने सेकंड की नींद (लेते हैं)। एक सेकंड की भी नहीं, एक मिनट की नींद नहीं। ऐसे तो (वे मुनि) जिनकी नींद उड़ गई है, जिनकी नींद (उड़ गई है) अर्थात् प्रमाद चला गया है। प्रमाद चला गया है। जहाँ कमाई दिखती है ना, वहाँ थकान नहीं दिखती। कमाई दिखती है वहाँ थकान (नहीं दिखती)। आहाहा!

कपड़ेवाले के बहुत ग्राहकी होती है न जब एकदम सीज़न बड़ा हो तब एक बज जाये, दो बज जाये, तीन बज जायें, भूख ही नहीं लगती उसको। वहाँ उसके बच्चे आयें, पापा पापा घड़ी में दो बज गये हैं, भोजन के लिये आओ। आज मुझे भूख नहीं लगी है। क्योंकि वो पैसा आ रहा होता है न? आहाहा! ऐसे ही भावलिंगी संत को... आनंद का भोजन करते हैं उसमें प्रमाद उड़ गया है उनको। उनका प्रमाद उड़ गया है। नींद नहीं आती। नींद तो पाप है। नींद के परिणाम तो पाप हैं। आहाहा! उसमें उपयोग लब्धरूप हो जाता है। उपयोग व्यापाररूप नहीं रहता। दोष होता है उसमें।

इसलिए साधक संत कहते हैं कि भाई! तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। जाननहार जानने में आता है, जाननहार जानने में आता है। एक बार छह महीने प्रेक्टिस तो कर! आहाहा! तो तुझे आत्मा का ज्ञान होगा और भव का अंत आयेगा। यहाँ ऐसा कहते हैं। भले चाहे जितने पंचमहाव्रत निरतिचाररूप से पाले, दोष आता है। अनाचार नहीं, अतिचार। दोष आने पर प्रायश्चित लेता है, हों!

गुरु कहें तीन उपवास। प्रमाण वचन! आहाहा! (गुरु कहें) खड़े रहो चौबीस घंटे! तो खड़ा रहे। बैठे नहीं, खड़ा ही रहे। ऐसी तो जिसकी बाह्य क्रिया कर्ताबुद्धिपूर्वक की, कर्ताबुद्धि(पूर्वक की)। सहजदशा नहीं है द्रव्यलिंगी की। भावलिंगी की सभी सहजदशा होती है। ऐसा-ऐसा अनंतबार इसने किया। नवमें ग्रैवेयक तक भी गया। **"बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला। तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।"**आहाहा!

'श्रुतकेवली जैसा हो तथापि वह ज्ञानमय भाव के अभाव के कारण...,'अस्ति-नास्ति अनेकांत किया। अज्ञान का सद्भाव और ज्ञान का अभाव। इस तरह से भी ऐसा और उस तरह से भी ऐसा।

इसप्रकार अज्ञान का सद्भाव है और ज्ञान का उसको अभाव है, इसलिए अज्ञानी है। **आत्मा को नहीं जानता...** लेकिन शास्त्र को जानता है। नवतत्व को जानता है। छह द्रव्य को जानता है। चौदह गुणस्थान को जानता है। चौदह मार्गणा स्थान को जानता है। आठ कर्म को जानता है। उत्तर प्रकृति, एक सौ अड़तालीस कर्म की प्रकृति, इसप्रकार मौखिक रहती हैं हों! फटाफट बोल जाये। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र सब (बोल) जाये। एक-एक के भेद ऐसे फटाफट बोल जाये। दूसरा तो ग्रहण भी नही कर पाता इतने में तो ये पूरा कर देता है। इतनी तेजी से ... धारणा से। आहाहा!

तूने कर्म को जाना, आठ कर्म को, लेकिन आठ कर्म से भिन्न आत्मा है, उसको जाना नहीं। इसलिए अज्ञान रह गया। श्रुतकेवली जैसा भले हो। **आत्मा को नहीं जानता और जो आत्मा को नहीं जानता...** अपने शुद्धात्मा को जो नहीं जानता..., **और जो आत्मा को नहीं जानता वह अनात्मा को भी नहीं जानता...** वह राग अनात्मा है, देह अनात्मा है, वह मेरे से भिन्न है, इसप्रकार उसे पररूप नहीं जानता। जो आत्मा को स्वपने नही जानता, वह देहादि को पररूप भी नहीं जानता। देहादि को स्वपने जानता है। परपने कब जाने? कि जब स्वपने कोई वस्तु हाथ में आई हो तो! स्वपने आत्मा जानने में आये, जब(ऐसा माने) कि मैं तो जाननहार वह मैं हूँ। इसप्रकार दृष्टि में द्रव्य में आया आत्मा, तब रागादि देहादि कर्म वो मैं नहीं, मेरी वस्तु नहीं। बाहर की वस्तु है।

आत्मा को जाने बिना वह वास्तव में पर को भी सम्यक प्रकार से जानता नहीं है। भाषा (शब्दों में) बोलता है कि पर है। भाषा। आहाहा! वाचाल है वह। आत्मा को नहीं जानता वह पर को भी पररूप नहीं जानता। पर को स्वपने जानता है। लेकिन स्व को स्वपने जाने, तब पर को परपने जाने। भेदज्ञान हो गया।

एक बार मुंबई में ऐसी घटना बनी। एक भाई बाहर के गाँव से आते थे। एड्रेस उनके पास था। वे पहली बार मुंबई आये थे देश(गाँव) में से। उसमें बोरीबंदर उतरे। उतरकर चार-पाँच चक्कर लगाए। एक भाई मिले, कहा कि "भाई मुझे इस फलाने ठिकाने पर जाना है"। "हाँ, मैंने देखा है। चलो मेरे साथ।" समझ गये? चलकर यह भाई उसे ले गये। वह भाई सुंदर रूपवाला और कपड़े तो ऐसे इस्त्री टाइट.., साहूकार दिखता था। मील, दो मील, तीन मील हुये, फिर पूछा, "भाई, तुम कहाँ रहते हो?" "यह तो मुझे खबर नहीं है।" ओहो! तुझे तेरे घर की खबर नहीं है तो इस एड्रैस को तो तू कहाँ से

बता सकेगा? तो उसका साथ छोड़ दिया और टेक्सी करके घर पहुँच गया।

इसप्रकार जो आत्मा को नहीं जानता, वह पुद्गल को भी नहीं जानता। हम इस देह को अलग जानते हैं। इस अलमारी को भिन्न जानते हैं। ऐसा? अलमारी को परपने जानता है? हाँ! "तो स्वपने कौन है?" "वह मुझे पता नहीं है।" तेरा स्व क्या? यह मकान मेरा है, कुटुंब मेरा...। समझ गये? सभी वस्तु मेरी हैं, लेकिन तेरी वस्तु क्या? तो (कहता है) यह मुझे खबर नहीं है। उसका नाम पागल अज्ञानी कहने में आता है। बही-खाते में उधारी कितनी है वो बता देता है। लेकिन तू कौन है? उसके बिना काम नहीं चलेगा....

'अनंतकाल जीव भटका बिना भान भगवान'। 'जो स्वरूप समझे बिना पायो दुःख अनंत'। एक लाइन में। पार बिना (अपार) रखड़ता है। जो अपने स्वरूप को नहीं जानता, वह संसार में भटकता है। आहाहा! **और जो आत्मा को नहीं जानता**, स्व को नहीं जानता, अपने को नहीं जानता **वह अनात्मा को-** राग, कर्म, शरीर अनात्मा, सारा लोकलोक अनात्मा। पंचपरमेष्ठी भी ये आत्मा नहीं हैं, इसलिए उसकी अपेक्षा से उनको अजीव भी कहने में आता है, पर।

क्योंकि... अब एक महासिद्धांत। आहाहा! ये जगत के जीव, अनेकांत शब्द से ठगाये गये हैं। शब्द से, भाव (समझने) से तो भान हो जाए। अनेकांत का रहस्य समझे तो तो सम्यग्दृष्टि हो जाये। आत्मा का अनुभव हो जाये। लेकिन अनेकांत को भाव से समझते नहीं हैं। अनेकांत का स्वरूप अनेकांत ही है। सम्पूर्ण जैनदर्शन अनेकांत स्वरूप से रहा हुआ है। पदार्थ का स्वरूप भी अनेकांतिक है।

लेकिन अनेकांत के दो प्रकार हैं। एक अनेकांत तो अनुभव होने के पश्चात् अनंत गुण, अनंत पर्याय और अनंत अपेक्षित धर्म- ऐसे सम्पूर्ण ज्ञेय को स्वयं जानता है युगपद्। सर्व को जाने, उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। वह अनुभव के बाद प्रगट होता है। ऐसा अनेकांत। वह अनेकांत स्वज्ञेयरूप है। प्रमाणज्ञान से जानने में आता है सब। वह प्रमाणज्ञान। लेकिन प्रमाणज्ञान कैसे प्रगट होता है? वह अनेकांत से प्रगट होता है। वह अनेकांत अर्थात् क्या? इसमें लिखा हुआ है, देखो।

'स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता- इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है;' महा सिद्धांत है अनेकांत। स्वपने है और परपने नहीं है। अस्ति-नास्ति अनेकांत। यह अस्ति और नास्ति। आत्मा ज्ञायकपने है और रागपने नहीं है। शुद्ध है और अशुद्ध नहीं है। नित्य है और अनित्य नहीं है। एक है और अनेक नहीं है। इसप्रकार अंदर ही अंदर में एक, आहाहा! अनेकांत भेदज्ञानपरक है। शब्द! अनेकांत अस्ति-नास्ति, स्वपने है और परपने नहीं। अब उसके दो प्रकार हैं। एक ज्ञान-प्रधान अनेकांत और एक दृष्टि-प्रधान अनेकांत। उसे शास्त्रीय भाषा में प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी (कहते हैं)। हमें उसकी जरूरत नहीं है। ऐसे शब्द की कोई जरूरत नहीं है। भाव का काम है। दो प्रकार हैं अनेकांत के। इस अनेकांत के दो प्रकार में, एक समयसार में है और एक प्रवचनसार (में)। प्रवचनसार और समयसार। एक प्रवचनसार का अनेकांत और एक समयसार का अनेकांत।

प्रवचनसार के अनेकांत में क्या कहते हैं? कि अपना द्रव्य, गुण, पर्याय (अपने) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, वह स्व और लोकालोक पर। अब ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत जब जीव जानता है, तब पर

से बिल्कुल भिन्न पड़ जाता है। फिर यह महान मेरा और लड़का मेरा और देह मेरी- ऐसा रहता नहीं। राग मेरा- (यह) रह जाता है। राग मेरा। आहाहा! राग मेरा, सुख मेरा- यह (श्रद्धान) रह जाता है। यह प्रमाण का ज्ञान-प्रधान अनेकांत (है)।

दो द्रव्यों की भिन्नता बतानेवाला अनेकांत प्रवचनसार में है। कि परद्रव्य के साथ मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मेरे द्रव्य, गुण और पर्याय मेरे में हैं। मैं अकेला संसार में भटकता हूँ और मैं अकेला मोक्ष में जाता हूँ। राग करूँ तो बंधूँ और वीतराग भाव आये तो छूटूँ। मात्र अंदर ही अंदर में सब पूरा द्रव्य, गुण, पर्याय, सब अंदर में। उसे दो द्रव्य की भिन्नता करनेवाला अनेकांत। स्वद्रव्यपने है और परद्रव्यपने नहीं है। इसप्रकार स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता।

ये दो ऊँगली हैं न? दो। दो ऊँगली हैं। अब इन दो ऊँगली में, हमें यह ऊँगली नक्की करनी है तो यह ऊँगली किस तरह से नक्की हो? इस ऊँगली में इसका अभाव। इस अस्ति में इसकी नास्ति। इसकी अस्ति में इसकी नास्ति, यह ऊँगली है। यह ऊँगली मेरी दुःखती है साहब! कौनसी ऊँगली दुःखती है? इसका ऑपरेशन करना है। क्योंकि इसमें इसका अभाव है। दुःखती है यह। इसका (दूसरी ऊँगली का) ऑपरेशन मत करना। इसका करना। समझ गये? एक में दूसरे की नास्ति, इसको अस्ति-नास्ति अनेकांत कहने में आता है। यह ज्ञान-प्रधान अनेकांत है। पर से भिन्न कर देता है। पर से तो ऐसा भिन्न करता है कि उसका मिथ्यात्व गलने लगता है। टलता नहीं है अभी। वह समयसार के अनेकांत में आता है तब टलता है। प्रवचनसार के अनेकांत में पर से भिन्न पड़ता है।

फिर अंदर में आता है। समयसार लिखते हैं जब, आचार्य भगवान कहते हैं कि मैंने पर से भिन्न करनेवाले अस्ति-नास्ति अनेकांत की बात तो प्रवचनसार में की है। लेकिन अब एक मुझे अस्ति-नास्ति अनेकांत अंदर की बात करनी है। तू अंदर में तो आया। प्रमाण के बाहर भटकता था, उसके बदले प्रमाण में तो, वर्तुल (परिधि) में तो आया। तेरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में आया। लेकिन उसमें कुछ साध्य की सिद्धि नहीं है। तब क्या करना? अब?

तब शुरूआत में कहते हैं **'मैं एकत्व विभक्त आत्मा की बात कहूँगा'।** स्व से एकपना और पर से भिन्न, ऐसी बात मैं कहूँगा। अंदर में अस्ति-नास्ति अनेकांत। देखो! अनेकांत द्वारा भी एक सम्यक् आत्मा की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है।

अनेकांतिक ज्ञान भी सम्यक् एकांत ऐसे निजपद की प्राप्ति के सिवा अन्य हेतु से उपकारी नहीं है'। अब अंदर में आता है तब शिष्य पूछता है। कि आप कहते हो कि आत्मा को मैं ऐसा बताऊँगा एकत्व-विभक्त। अनंतगुणों से एकपना और अनंत पर्यायों से भिन्नपना, वह स्वरूप मुझे समझाओ। तब आचार्य भगवान फरमाते हैं कि यह ज्ञायक भाव है, उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त की नास्ति है। इसकी (ज्ञायक) अस्ति में, उसकी नास्ति। ज्ञायक में ज्ञायक भी है और राग भी है तो तो एकांत हो गया। अनेकांत नहीं हुआ। अनेकांत दो भाव को और दो द्रव्य को भिन्न करता है।

प्रवचनसार का अनेकांत दो द्रव्यों को भिन्न करता है और समयसार का अनेकांत स्वभाव और विभाव को भिन्न करता है। प्रमत्त-अप्रमत्त मेरे में नहीं हैं। नास्ति है। अर्थात् पर्याय की अस्ति, लेकिन मेरे में नास्ति, ऐसी मेरी अस्ति। ऐसा अनुभव, उसका नाम मस्ती है।

इस समयसार में द्रव्य और पर्याय के भेदज्ञान की बात चलती है। प्रवचनसार में दो द्रव्यों की भिन्नता बताते हैं। यहाँ पर ऐसा कहते हैं। '**स्वरूप से सत्ता**' स्वपने है आत्मा और रागादिपने (नहीं है)। जीव, जीवपने है और अजीवपने नहीं है। अजीव की नास्ति। छः द्रव्य की नास्ति। देव-शास्त्र-गुरू की नास्ति। नवतत्व की भी नास्ति। पुण्य-पाप की भी नास्ति। न-थी। नथी अर्थात् नास्ति । न-थती। न.. - नथी है न? न-थी, न-थी न-थी। न अस्ति, नास्ति। मेरे में वो है नहीं। तो मेरे में जो नहीं (है), उसे मैं कैसे कर सकता हूँ? राग तो मेरे में नास्तिपने है तो मैं राग को कैसे कर सकता हूँ प्रभु? कि तू उसका कर्ता नहीं है क्योंकि तेरे में उसका अभाव है। जिसका जिसमें अभाव होता है, उसका आत्मा कर्ता नहीं बन सकता। ठीक साहेब! इतना तो समझ में आया कि राग की नास्ति है। राग का मैं कर्ता नहीं हूँ। लेकिन दुःख होता है, वो तो मैं वेदन करता हूँ न?

सुन! आत्मा सुखमय है और दुःखमय नहीं है। दुःख की तेरे में नास्ति। (कब?) कि जब दुःख होता है तब। जब दुःख शिथिल होता है, तब की बात नहीं है यह। यह भेदज्ञान की बात है। यह जहाँ-तहाँ मिल जाये ऐसा नहीं है। हमारे समधी के समधी हैं। समझ गये? आहाहा! अरे! यह तो सर्वज्ञ भगवान के अलावा यह बात कहीं (भी नहीं है)। कहीं मार्ग नहीं है। सब गोते खाते हैं। व्यर्थ ही भटकते हैं संसार में। आहाहा!

अस्ति-नास्ति अनेकांत। तुम अनेकांतवादी हो? हाँ! हम अनेकांतवादी हैं। सर्वज्ञ भगवान का वचन अनेकांतमय है। अनेकांत अर्थात् क्या? आत्मा आत्मापने है और रागपने भी है और देहपने है, ये अनेकांत है? नहीं। यह अनेकांत नहीं है। यह तो खिचड़ा किया है तूने! गेहूँ और कंकड़ को भिन्न नहीं किया। गेहूँ में कंकड़ की नास्ति है। गेहूँ में कंकड़ की नास्ति, तब गेहूँ की अस्ति है। अस्ति सिद्ध करने के लिये नास्ति का उपयोग करोगे, तब अस्ति हाथ में आयेगी। केवल ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, नहीं हाथ में आएगा। कि ज्ञायक तो हूँ लेकिन मेरे में पुण्य-पाप की नास्ति है।

अब तेरी जिस आत्मा में शुभाशुभ भाव नहीं हैं, और उसका उपदेश देते हैं कि शुभभाव तो करना चाहिये, और व्यवहार करते-करते (निश्चय)) होता है, नहीं तो स्वच्छंदी (हो जायेगा)। कुछ खबर नहीं है! अनेकांत का हथियार वह जानता नहीं है। दो प्रकार के अनेकांत हैं। आहाहा!

एक, एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को भिन्न करता है। मिथ्यात्व गलने लगता है, मिथ्यात्व (गलने लगे)। दो द्रव्य की एकता थी और देह और आत्मा को एक मानता था। अरे! देह की मेरे में नास्ति है। अब देह की नास्ति है, देह की नास्ति है, आहाहा! तो पुत्र की भी नास्ति और पुत्रवधू की (भी नास्ति)। भले अस्पताल में हो, तो भी उसकी मेरे में नास्ति है। आहाहा! ऐसी मेरी अस्ति है।

तो परपदार्थ से उसे ममता घटने लगती है कि (यह) मेरा नहीं है। मेरे में नहीं है इसलिए मेरी चीज (नहीं है)। आहाहा! इसप्रकार फिर अंदर में आता है कि ज्ञानमय हूँ और रागमय नहीं हूँ। उसके लिये, भेदज्ञान के लिये अनेकांत का एक उदाहरण (द्रष्टांत) बहुत सुंदर देते हैं आचार्य भगवान। आहाहा! अभी तो राग का कर्तृत्व भासित होता है तुझे प्रभु! आहाहा! वह जैनमत का उपदेश नहीं है। आहाहा! जैन के मत का उपदेश तो रागादि से आत्मा भिन्न है और ज्ञान से आत्मा अभिन्न है। उसके लिये उदाहरण देते हैं, अनेकांत के लिये।

कि एक अंधा था, जन्म से अंधा। तो घी का घड़ा, घी का घड़ा, घी का घड़ा, कान से सुना करता था। आँख तो थी ही नहीं। इसलिए घी का घड़ा कहें, वही सुनना पड़े न? इसप्रकार अज्ञानी जो कहता है वह अज्ञानी सुनता है। आत्मा रागी है, आत्मा दुःख भोगता है। और वे सुननेवाले अंधे और कहनेवाले भी अंधे! ऐसे। दूसरे क्या करें नवीन जीव! व्यवहार का उपदेश दिया ही करते हैं।

पहले व्यवहार होता है। निश्चय तो बाद में धीरे- धीरे आता है। हम गृहस्थ हैं। पहले तो इतना करना (चाहिये)। आहाहा! (जो) आये उसे जानूँ वह व्यवहार है या (जो) आये उसे करूँ वह व्यवहार है? परिणाम आता है, उसे करूँ वह व्यवहार नहीं है। वह तो अज्ञान है। वह आता है, उससे भिन्न आत्मा है- ऐसा जानना, उसे व्यवहार कहने में आता है।

हमारे ऊपर एक आफत आयी। बहुत वर्ष पहले मैं वाँचन करता था, राजकोट में। अब सप्ताह में तीन बार तो वाँचता हूँ। पहले तो, मुंबई जाने से पहले तो रोज़ वहाँ वाँचता था। उसमें एक आफत आयी। पढ़े-लिखे बड़े, समझ गये? डिग्रीवाले लोग, कितने ही। लोग तो बहुत आवें न? भाई! आप निश्चय की बात तो बहुत अच्छी करते हो। भाई! आप निश्चय की बात तो (बहुत अच्छी करते हो)। लेकिन यदि थोड़ी आप यह व्यवहार की बात करोगे न तो सोने में सुगंध मिल जायेगी। मैंने कहा जरूर! कल से मैं व्यवहार की बात करूँगा। मन में मैंने कहा कि तुम राह देखते रहना। तुम (जो) माँगते हो वह व्यवहार आनेवाला नहीं है। लेकिन उसको खड़ा रखा। खुश हो गया। दूसरे दिन जल्दी आ गये पाँच मिनिट। आहाहा! आज तो व्यवहार की बात आनेवाली है।

(मैंने) कहा, भाई! शुभभाव आता है न, उससे आत्मा भिन्न है ऐसा जानना, उसका नाम व्यवहार है। शुभभाव करना, उसका नाम व्यवहार नहीं है। वह तो अज्ञान दृढ़ हो गया तेरा।

ऐसा प्रश्न गुरुदेव से पूछा गया था। समझ गये? करोड़पति व्यक्ति, विरानी, छोटूभाई विरानी। शाम को सुनने के लिए आये, प्रश्नोत्तर। कहा, कि प्रभु! साहेब! पाप तो हमें करना नहीं है। क्योंकि पाप करेंगे तो नरक-निगोद में जाएँगे। आप कहते हो कि आत्मा का अनुभव करने से धर्म की शुरूआत होती है। वहाँ तक पहुँचा जाता नहीं है। अब बीच में रहा पुण्य। तो पुण्य करना या नहीं करना?

पुण्य करना या पुण्य नहीं करना? उसका ऐसा सुंदर जवाब दिया कि जब पुण्य के परिणाम आते हैं न शुभभाव, तब उससे आत्मा भिन्न है, ऐसा बारंबार विचार करना। पुण्य करना, ऐसा नहीं कहा और पुण्य नहीं करना, ऐसा भी नहीं कहा।

पुण्य करना छोड़ दे, ऐसा भी नहीं और पाप छोड़कर और पुण्य कर, ऐसा भी नहीं। पुण्य के परिणाम... आर्य जीव है। दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम आते हैं। भगवान की भक्ति का भाव आवे, शुभभाव आवे, यात्रा का भाव आवे। आवे, आवे, आवे, आवे... तुम उनके ग्यारह भाग (प्रवचन रत्नाकर के) पढ़ना। આવે આવે આવે આવે આવે એમ કહે છે. आवे, आवे, आवे, आवे आवे, ऐसा कहेंगे। करे, करे, करे, ऐसा कहीं तुम ढूँढने जाओगे, तो मिलेगा नहीं। और अज्ञानी के पास तो करे, करे, करे वह ही आता है। आवे, आवे- यह शब्द में भी (नहीं आता)। शब्द में नहीं आता तो भाव में तो कहाँ से आयेगा? क्योंकि भाव में नहीं है अतः शब्द में भी आता नहीं। आहाहा! लाइन में ही फर्क है बड़ा। यह आत्मा ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। प्रभु! जिसप्रकार अरिहंत भगवान द्रव्य-गुण-पर्याय से

जाननेवाले हैं, ऐसे मैं भी जाननेवाला हूँ। आहाहा!

यह अनेकांत तो अमृत है कि आत्मा, आत्मापने है और परपने (नहीं है)। आत्मा, आत्मापने है और रागपने नहीं है। **'स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता।'** सिद्धांत-बोध। तीनोंकाल बदलता नहीं अनेकांत। आहाहा! स्याद्वाद। स्वपने है और परपने नहीं।

'-इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है;' आत्मा ज्ञानमय है, रागमय नहीं। उसके लिये एक दृष्टांत दिया आचार्य भगवान ने (**समयसार गाथा ६७**), कि अंधा था और सुनता था घी का घड़ा। फिर उससे किसी ने कहा कि "घी का घड़ा", (इसको) कोष्ठक में डाला। **'जो यह "घी का घड़ा" है सो मिट्टीमय है, घीमय नहीं'**। हें? घी का घड़ा कहते हो आप? कि हाँ। लेकिन "घी का घड़ा"। "घी का घड़ा है" ऐसा हमने कहाँ कहा? "घी का घड़ा" ऐसा कहा था। "है" वह तो जरा आगे लिखा है मैंने। "है" (उसके) साथ में जोड़ा नहीं है। तो तो तू जैसा मानता है, वैसा (ही) हो जायेगा। तो तुझे आधार (बल) मिल जायेगा। जयंतीभाई! समझ में आता है ये कुछ? समझ में आता है न इतना तो? आहाहा! "घी का घड़ा है" ऐसा नहीं लिखा ज्ञानी ने। **"घी का घड़ा"** इसप्रकार इन्टू कोमा कर दिया। **'है सो मिट्टीमय है, घीमय नहीं'।**

इसप्रकार। इसप्रकार, उसका उदाहरण। "आत्मा रागी"। "आत्मा रागी"। "(आत्मा) रागी है" ऐसा नहीं। "आत्मा रागी"। फिर थोड़ी (जगह) छोड़कर, **है सो** क्योंकि आत्मा तो है न? आत्मा तो है न? **है सो ज्ञानमय है, रागमय नहीं।** आहाहा! यह क्या? कि कब? कि तीनों काल। कब? कि तीनों काल आत्मा का स्वरूप है ऐसा।

फिर आगे, दुःख की बात कुछ कहो। क्योंकि दुःख की बात.., दुःख (प्रत्यक्ष) अनुभव में आता है। आहाहा! अनुभव में आता है या जानने में आता है तुझे? अनुभव में आता है तो मिथ्यादृष्टि है। जानने में आता है, तो ज्ञानी। आहाहा! अब वो बात करते हैं। यह तो इसमें व्यवहार स्वरूप से कि "दुःखी आत्मा"। "दुःखी आत्मा" है वह सुखमय है, दुःखमय नहीं है। कब? तीनोंकाल। अभी। अभी। समझ गये?

एकबार हम घूमने के लिये जाते थे। कल वह बात निकाली थी आपने। सात-आठ वर्ष पहले ऐसी एक बात की थी। मैंने कहा, क्या बात की थी? आपने ऐसा कहा था कि कल्याणभाई! तुमने भूतकाल में किसी दिन दुःख को भोगा नहीं है। तुम तो सुखमय रहे हो भूतकाल में। अभी तुम सुखमय हो। और भविष्य में भी सुखमय रहनेवाले हो। दो चार-पाँच भव भले हों कदाचित् लेकिन दुःखमय आत्मा होता नहीं। यह तो भ्रांति हो गई है उसे दुःखमय होने की। वह तो ज्ञानमय और तीनोंकाल सुखमय है। ऐसे सुखमय का अवलंबन लेने पर पर्याय के दुःख का नाश हो जायेगा। पर्याय के दुःख में पर्याय का दुःख नहीं रहेगा। सुखमय आत्मा को एकबार देखो और फिर देखो बाहर निकलकर। अरे! दुःख कहाँ गया? दुःख अवस्तु हो गया। सम्यग्दर्शन हुआ। मिथ्यात्व कहाँ गया? अवस्तु हो गया। आहाहा!

लेकिन उसे व्यवहार ऐसा गले पड़ा है कि जब आत्मा में दुःख होता है तब उसका स्वीकार करते हैं, तो ज्ञान होता है। (ज्ञानी कहते हैं) कि उसका स्वीकार वह अज्ञान है, जा। आत्मा सुखमय है,

दुःखमय नहीं है। दुःख होता है तब उसकी नास्ति विचारना। उसकी अस्ति नहीं विचारना। अस्ति विचारोगे तो आत्मा दुःखमय ही लगेगा। आहाहा! नास्ति की तुम अस्ति में खतौनी करोगे, समझ में आया? नास्ति, जो तुम्हारे में नहीं है, उसको तुम अस्ति में स्थापित करोगे, तो मैं दुःखमय हूँ, ऐसा तुम्हें लगेगा। वह तो भ्रांति है, अज्ञान है, मिथ्यात्व है। है सुखमय और भासित होता है दुःखमय।

अब आगे। कि प्रत्येक जीव को जानने में आता है ज्ञायक। प्रत्येक जीव को (जानने में आता है ज्ञायक), भव्य हो या अभव्य। एकइन्द्रिय, दोइन्द्रिय सबको। जानने में आता है ज्ञायक। स्वज्ञेय जानने में आता है और भासित होता है कि मुझे ये परद्रव्य जानने में आते हैं। यह भ्रांति है। यह भ्रांति है। संसार है। यह सब समयसार में है हों! मेरे घर की बात नहीं कहता हूँ। यह तो कुदरती कोई पैंतालीस वर्ष का योग! चौथा काल आ गया। आहाहा! रिएक्शन आया और यह बात शास्त्र में थी और उन पुरुष ने अनुभव करके जाहिर की है। और ग्यारह भागों में (प्रवचन रत्नाकर में) और उनकी सभी टेपों में भरा हुआ है। आहाहा!

'स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता।' तुम्हारा बंगला और उसके आजु-बाजु में दो बंगले हैं। तो तुम्हारा बंगला यह है, यह सीमा तुम्हारी है, ऐसा कब सिद्ध होता है? ऐसा कब सिद्ध होता है? कि दूसरे बंगले की मेरे में (नास्ति है)। कि तुम्हारा बंगला भी तुम्हारा और वह (दूसरा) बंगला भी तुम्हारा? ऐसा नहीं होता। उसकी सीमा होती है तुम्हारी। कि दो सौ फुट या दो सौ गज वह मेरा। बाकी दूसरा मेरा नहीं है। मेरे में नास्ति है। तब एक पदार्थ की सिद्धि होती है। व्यवहार में भी ऐसा है। व्यवहार में भी (ऐसा है)। तो ही व्यवहार चले। नहीं तो व्यवहार न चले।

निश्चय में तो बात क्या करनी? आहाहा! मैं ज्ञानमय हूँ, रागमय नहीं। राग की मेरे में नास्ति है। राग है अवश्य। देह है अवश्य। कर्म होते हैं अवश्य। 'है' की ना नहीं है। लेकिन वे मेरे में नहीं-पने हैं। मेरे में वे हैं (नहीं)। अस्ति-नास्ति अनेकांत, स्वपने है और परपने नहीं। वहाँ भेदज्ञान होकर, मिथ्यात्व का अभाव होकर और आत्मभान होकर और अनुभव आत्मा का होता है, ऐसी अपूर्व बात है इसमें। **'स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता'** महासिद्धांत। ऐप्लाई करना, चारों तरफ से। ऐप्लाई, तो समझ गये न? सिद्धांत को चारों तरफ से। दो और दो चार तो दो और दो चार। इसप्रकार **'स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता'।**

मैं आत्मापने भी हूँ और देहपने भी हूँ, ऐसे अनेकांत होगा? आहाहा! वह तो एकांत किया। एकता करी है उसने। ममता की है। आहाहा! पैसा, लक्ष्मी, सोना, चाँदी है पर मेरेपने नहीं हैं। अस्तिपने मैं और वह नहीं। मेरे में वह नहीं। उसमें भले ही वह हो। तो वह जो मेरे में नहीं है, नास्तिपने है, उसको जानते-जानते अस्ति किस दिन जानने में आएगी? किसी काल जानने में नहीं आएगी। जो नहीं है, वह मेरे ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। जो है, वह मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। अंदर उपयोग को आत्मा जब ज्ञेय बनाता है, ज्ञेय बनता है, तब आत्मा का अनुभव होता है। तब उस समय पर जानने में नहीं आता । तब वास्तव में अस्ति-नास्ति अनेकांत का जन्म अनुभव के काल में, अनुभव के काल में होता है।

ऐसी अपूर्व बात समयसार निर्जरा अधिकार में है।

स्तुति।